श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

गजेन्द्र मोक्ष

जब विपत्ति हो अपरोक्ष
तब तारता है गजेंद्र मोक्ष

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
अष्टमः(स्) स्कन्धः
अथ तृतीयोऽध्यायः

श्री शुक उवाच

एवं(वँ) व्यवसितो बुद्ध्या, समाधाय मनो हृदि |
जजाप परमं(ञ्) जाप्यं(म्), प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ 1॥

प्राग् + जन्मन् + यनु + शिक्षितम्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय करके गजेन्द्र ने अपने मनको हृदय में एकाग्र किया और फिर पूर्व जन्म में सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्र के जपद्वारा भगवान् की स्तुति करने लगा।

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै, यत एतच्चिदात्मकम्।

पुरुषायादिबीजाय, परेशायाभिधीमहि ॥ 2॥

एतच् + चिदात् + मकम्, पुरुषाया + दिबीजाय, परेशाया + भिधीमहि

गजेन्द्र ने कहा—जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदय में पुरुष के रूप में विराजमान हैं एवं समस्त जगत्के एक मात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसार में चेतनता का विस्तार होता है—उन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेम से उनका ध्यान करता हूँ।

यस्मिन्निदं(यँ) यतश्चेदं(यँ), येनेदं(यँ) य इदं(म्) स्वयम्।

योऽस्मात् परस्माच्च परस्-तं(म्) प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ 3॥

यस्मिन् + निदं(यँ), परस् + माच्च, स्वयम् + भुवम्

यह संसार उन्हीं में स्थित है, उन्हीं की सत्ता से प्रतीत हो रहा है, वे ही इस में व्याप्त हो रहे हैं और स्वयं वे ही इसके रूप में प्रकट हो रहे हैं। यह सब होने पर भी वे इस संसार और इसके कारण—प्रकृति से सर्वथा परे हैं। उन स्वयं- प्रकाश, स्वयं सिद्ध सत्तात्मक भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

यः(स्) स्वात्मनीदं(न्) निजमाययार्पितं(ङ्),

क्वचिद् विभातं(ङ्) क्व च तत् तिरोहितम्।

अविद्धदृक् साक्ष्युभयं(न्) तदीक्षते,

स आत्ममूलोऽवतु मां(म्) परात्परः ॥ 4॥

स्वात्म + नीदं(न्), निज + माययार् + पितं(ङ्), अविद् + धदृक्,

साक्ष्यु + भयं(न्), आत्म + मूलोऽ + वतु

यह विश्व-प्रपञ्च उन्हीं की माया से उनमें अध्यस्त है। यह कभी प्रतीत होता है, तो कभी नहीं। परंतु उनकी दृष्टि ज्यों-की- त्यों—एक-सी रहती है। वे इस के साक्षी हैं और उन दोनों को ही देखते रहते हैं। वे सब के मूल हैं और अपने मूल भी वही हैं। कोई दूसरा उनका कारण नहीं है। वे ही समस्त कार्‌य और कारणों से अतीत प्रभु मेरी रक्षा करें।

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो,

लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।

तमस्तदाऽऽसीद् गहनं(ङ्) गभीरं(यँ),

यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ 5॥

पञ्चत्व + मितेषु , कृत्स् + नशो, तमस् + तदाऽऽसीद्, पारेऽ + भिविराजते

प्रलय के समय लोक, लोक पाल और इन सबके कारण सम्पूर्ण- रूपसे नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है। परंतु अनन्त परमात्मा उस से सर्वथा परे विराज मान रहते हैं। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें।

न यस्य देवा ऋषयः(फ्) पदं(वँ) विदुर्-

जन्तुः(फ्) पुनः(ख्) कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।

यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो,

दुरत्ययानुक्रमणः(स्) स मावतु ॥ 6॥

गन्तु + मीरि + तुम्, नटस्या + कृतिभिर् + विचेष्टतो, दुरत्यया + नुक्रमणः(स्)

उनकी लीलाओं का रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नटकी भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूप को न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो वहाँतक जा सके और उसका वर्णन कर सके ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें।

दिदृक्षवो यस्य पदं(म्) सुमंगलं(वँ),

विमुक्तसङ्गा मुनयः(स्) सुसाधवः।

चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं(वँ) वने,

भूतात्मभूताः(स्) सुहृदः(स्) स मे गतिः ॥ 7॥

विमुक्त + सङ्गा , चरन्त्य + लोक + व्रत + मव्रणं(वँ), भूतात्म+ भूताः(स्)

जिन के परम मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन करने के लिये महात्मागण संसार की समस्त आसक्तियों का परित्याग कर देते हैं और वन में जाकर अखण्ड भावसे ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रतों का पालन करते हैं तथा अपने आत्मा को सब के हृदय में विराजमान देख कर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं— वे ही मुनियों के सर्वस्व भगवान् मेरे सहायक हैं; वे ही मेरी गति हैं।

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा,

न नामरूपे गुणदोष एव वा।

तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः(स्),

स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ 8॥

लोका + प्यय + संभवाय , तान् + यनु + काल + मृच्छति

न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप; फिर उनके सम्बन्ध में गुण और दोष की तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है ? फिर भी विश्व की सृष्टि और संहार करने के लिये समय-समय पर वे उन्हें अपनी माया से स्वीकार करते हैं।

तस्मै नमः(फ्) परेशाय, ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।

अरूपायोरुरूपाय, नम आश्चर्यकर्मणे ॥ 9॥

ब्रह्मणेऽ + नन्त + शक्तये , अरूपा + यो + रुरूपाय

उन्हीं अनन्त शक्तिमान् सर्वैश्वर्यमय परब्रह्म परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। वे अरूप होने पर भी बहुरूप हैं। उनके कर्म अत्यन्त आश्चर्यमय हैं। मैं उनके चरणों में नमस्कार करता हूँ।

नम आत्मप्रदीपाय, साक्षिणे परमात्मने।

नमो गिरां(वँ) विदूराय, मनसश्चेतसामपि ॥ 10॥

मनसश् + चेतसामपि

स्वयं प्रकाश, सबके साक्षी परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। जो मन, वाणी और चित्त से अत्यन्त दूर हैं—उन परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय, नैष्कर्म्येण विपश्चिता।

नमः(ख्) कैवल्यनाथाय, निर्वाणसुखसं(वँ)विदे ॥ 11॥

नैष् + कर् + म्येण, कैवल्य+ नाथाय , निर्वाण + सुख + सं(वँ)विदे

विवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पण के द्वारा अपना अन्तःकरण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं तथा जो स्वयं तो नित्य मुक्त, परमानन्द एवं ज्ञान स्वरूप हैं ही, दूसरों को कैवल्य-मुक्ति देने की सामथ्र्य भी केवल उन्हीं में है—उन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ।

नमः(श्) शान्ताय घोराय, मूढाय गुणधर्मिणे ।

निर्विशेषाय साम्याय, नमो ज्ञानघनाय च ॥ 12॥

निर् + विशेषाय

जो सत्त्व, रज, तम— इन तीन गुणों का धर्म स्वीकार करके क्रमशः शान्त, घोर और मूढ़ अवस्था भी धारण करते हैं, उन भेद रहित समभाव से स्थित एवं ज्ञानघन प्रभु को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं(म्), सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।

पुरुषायात्ममूलाय, मूलप्रकृतये नमः ॥ 13॥

सर्वा + ध्यक्षाय, पुरुषा + यात्म + मूलाय

आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रों के एक मात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप स्वयं ही अपने कारण हैं। पुरुष और मूल प्रकृति के रूप में भी आप ही हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार।

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे, सर्वप्रत्ययहेतवे।

असताच्छाययोक्ताय, सदाभासाय ते नमः ॥ 14॥

सर्वेन्द्रिय + गुण + द्रष्ट्रे , सर्व + प्रत्यय + हेतवे, असताच् + छाय + योक्ताय

आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयों के द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियों के आधार हैं। अहंकार आदि छाया रूप असत् वस्तुओं के द्वारा आपका ही अस्तित्व प्रकट होता है। समस्त वस्तुओं की सत्ता के रूप में भी केवल आप ही भास रहे हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय,

निष्कारणायाद्भुतकारणाय।

सर्वागमाम्नायमहार्णवाय,

नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ 15॥

नमस्तेऽ + खिल + कारणाय ,निष्कारणायाद् + भुत + कारणाय

सर्वा + गमाम्नाय + महार्णवाय

आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। तथा कारण होने पर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिये आप अनोखे कारण हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार ! जैसे समस्त नदी-झरने आदि का परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रों के परम तात्पर्य हैं। आप मोक्ष स्वरूप हैं और समस्त संत आपकी ही शरण ग्रहण करते हैं; अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय,

तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय।

नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-

स्वयं(म्)प्रकाशाय नमस्करोमि ॥ 16॥

गुणा + रणिच्छन्न + चिदूष् + मपाय, तत्क्षोभ + विस्फूर्जित + मानसाय

नैष्कर्म्य + भावेन , विवर्जिता + गम ,स्वयं(म्) + प्रकाशाय

जैसे यज्ञ के काष्ठ अरणि में अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञान को गुणों की माया से ढक रखा है। गुणों में क्षोभ होने पर उनके द्वारा विविध प्रकार की सृष्टि- रचना का आप संकल्प करते हैं। जो लोग कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पण के द्वारा आत्मतत्त्व की भावना करके वेद-शास्त्रों से ऊपर

उठ जाते हैं, उनके आत्मा के रूप में आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय,

मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।

स्वां(म्)शेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-

प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ 17॥

मादृक् + प्रपन्न + पशुपाश+ विमोक्षणाय ,भूरि+ करुणाय, सर्व+ तनुभृन् + मनसि ,प्रत्यग् + दृशे

जैसे कोई दयालु पुरुष फंदे में पड़े हुए पशु का बन्धन काट दे, वैसे ही आप मेरे-जैसे शरणागतों की फाँसी काट देते हैं। आप नित्य मुक्त हैं, परम करुणामय हैं और भक्तों का कल्याण करने में आप कभी आलस्य नहीं करते। आपके चरणों में मेरा नमस्कार है। समस्त प्राणियों के हृदय में अपने अंश के द्वारा अन्तरात्मा के रूप में आप उपलब्ध होते रहते हैं। आप सर्वैश्वर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्-

दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय।

मुक्तात्मभिः(स्) स्वहृदये परिभाविताय,

ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ 18॥

आत्मात्म + जाप्त + गृह + वित्त + जनेषु ,गुणसङ्ग + विवर्जिताय

जो लोग शरीर, पुत्र, गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनों में आसक्त हैं—उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। क्योंकि आप स्वयं गुणों की आसक्ति से रहित हैं। जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदय में आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। उन सर्वैश्वर्यपूर्ण ज्ञान स्वरूप भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

यं(न्) धर्मकामार्थविमुक्तिकामा,

भजन्त इष्टां(ङ्) गतिमाप्नुवन्ति।

किं(न्) त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं(ङ्),

करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ 19॥

धर्म + कामार्थ + विमुक्ति + कामा ,गति + माप् + नुवन्ति, देह + मव्ययं(ङ्), मेऽद + भ्रदयो

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना से मनुष्य उन्हीं का भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकार का सुख देते हैं और अपने ही जैसा अविनाशी पार्षद शरीर भी देते हैं। वे ही परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें।

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थ(व्ँ),

वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।

अत्यद्भुतं(न्) तच्चरितं(म्) सुमंगलं(ङ्),

गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ 20॥

भगवत् + प्रपन्नाः, आनन्द + समुद्र + मग्नाः

जिनके अनन्य प्रेमी भक्त जन उन्हींकी शरण में रहते हुए उनसे किसी भी वस्तु की—यहाँ तक कि मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मङ्गलमयी लीलाओं का गान करते हुए आनन्द के समुद्र में निमग्न रहते हैं।

तमक्षरं(म्) ब्रह्म परं(म्) परेश-

मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम्।

अतीन्द्रियं(म्) सूक्ष्ममिवातिदूर-

मनन्तमाद्यं(म्) परिपूर्णमीडे ॥ 21॥

मव्यक्त + माध्यात्मिक + योगगम्यम् ,सूक्ष्म + मिवाति + दूर , मनन्त + माद्यं(म्)

जो अविनाशी, सर्व शक्तिमान्, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यन्त सूक्ष्म हैं; जो अत्यन्त निकट रहने पर भी बहुत दूर जान पड़ते हैं; जो आध्यात्मिक योग अर्थात् ज्ञानयोग या भक्ति योग के द्वारा प्राप्त होते हैं उन्हीं आदि पुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ।

यस्य ब्रह्मादयो देवा, वेदा लोकाश्चराचराः।

नामरूपविभेदेन, फल्व्या च कलया कृताः ॥ 22॥

लोकाश् + चराचराः, नाम + रूप + विभेदेन ,फल् + ग्व्या

यथार्चिषोऽग्नेः(स्) सवितुर्गभस्तयो,

निर्यान्ति सं(यँ)यान्त्यसकृत् स्वरोचिषः।

तथा यतोऽयं(ङ्) गुणसंप्रवाहो,

बुद्धिर्मनः(ख्) खानि शरीरसर्गाः ॥ 23॥

यथार् + चिषोऽग्नेः(स्), सवितुर् + गभस्तयो ,सं(यँ)यान्त्य + सकृत् , गुण + संप्रवाहो

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्,

न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।

नायं(ङ्) गुणः(ख्) कर्म न सन्न चासन्,

निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ 24॥

देवा + सुर + मर्त्य + तिर्यङ्, जयता + दशेषः

जिनकी अत्यन्त छोटी कला से अनेकों नाम-रूप के भेद-भाव से युक्त ब्रह्मा आदि देवता, वेद और चराचर लोकों की सृष्टि हुई है, जैसे धधकती हुई आग से लपटें और प्रकाश मान सूर्य से उनकी किरणें बार-बार निकलती और लीन होती रहती हैं, वैसे ही जिन स्वयं प्रकाश परमात्मा से बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर—जो गुणों के प्रवाह रूप हैं—बार-बार प्रकट होते तथा लीन हो जाते हैं, वे भगवान् न देवता हैं और न असुर। वे मनुष्य और पशु-पक्षी भी नहीं हैं। न वे स्त्री हैं, न पुरुष और न नपुंसक। वे कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं हैं। न वे गुण हैं और न कर्म, न कार्य हैं और न तो कारण ही। सबका निषेध हो जाने पर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं। वे ही परमात्मा मेरे उद्धार के लिये प्रकट हों।

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-

मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या।

इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्-

तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ 25॥

नाह + मिहा + मुया, मन्तर् + बहिश्चा + वृतये + भयोन्या , तस्यात्म + लोका + वरणस्य

मैं जीना नहीं चाहता। यह हाथी की योनि बाहर और भीतर—सब ओरसे अज्ञान रूप आवरण के द्वारा ढकी हुई है, इसको रखकर करना ही क्या है ? मैं तो आत्मप्रकाश को ढकने वाले उस अज्ञानरूप आवरण से छूटना चाहता हूँ, जो काल क्रम से अपने-आप नहीं छूट सकता, जो केवल भगवत्कृपा अथवा तत्त्वज्ञान के द्वारा ही नष्ट होता है।

सोऽहं(वँ) विश्वसृजं(वँ) विश्व-मविश्वं(वँ) विश्ववेदसम्।

विश्वात्मानमजं(म्) ब्रह्म, प्रणतोऽस्मि परं(म्) पदम् ॥ 26॥

विश्वात् + मान+ मजं(म्)

इसलिये मैं उन परब्रह्म परमात्मा की शरण में हूँ जो विश्वरहित होने पर भी विश्व के रचयिता और विश्वस्वरूप हैं—साथ ही जो विश्व की अन्तरात्मा के रूप में विश्वरूप सामग्री से क्रीड़ा भी करते रहते हैं, उन अजन्मा परमपद-स्वरूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ।

योगरन्धितकर्माणो, हृदि योगविभाविते।

योगिनो यं(म्) प्रपश्यन्ति ,योगेशं(न्) तं(न्) नतोऽस्म्यहम् ॥ 27॥

योग+ रन्धित + कर्माणो ,नतोऽस् + म्यहम्

योगी लोग योग के द्वारा कर्म, कर्म-वासना और कर्मफल को भस्म करके अपने योग शुद्ध हृदय में जिन योगेश्वर भगवान् का साक्षात्कार करते हैं—उन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ।

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-

शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय।

प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये,

कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ 28॥

नमस् + तुभ्य + मसह्य + वेग , शक्ति + त्रयाया + खिलधी + गुणाय

दुरन्त + शक्तये , कदिन्द्रि + याणा + मन + वाप्य + वर्त्मने

प्रभो ! आपकी तीन शक्तियों—सत्त्व, रज और तम के रागादि वेग असह्य हैं। समस्त इन्द्रियों और मनके विषयों के रूप में भी आप ही प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वे तो आपकी प्राप्ति का मार्ग भी नहीं पा सकते। आपकी शक्ति अनन्त है। आप शरणागत वत्सल हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

नायं(वँ) वेद स्वमात्मानं(यँ), यच्छक्त्याहं(न्)धिया हतम्।

तं(न्) दुरत्ययमाहात्म्यं(म्), भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ 29॥

स्व + मात्मानं(यँ), यच् + छक्त्या + हं(न्)धिया

दुरत्यय + माहात्म्यं(म्), भगवन्त + मितोऽस् + म्यहम्

आपकी माया अहंबुद्धि से आत्मा का स्वरूप ढक गया है, इसी से यह जीव अपने स्वरूप को नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुर्यनिधि भगवान् की मैं शरण में हूँ।

श्रीशुक उवाच

एवं(ङ्) गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं(म्),

ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।

नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्,

तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ 30॥

गजेन्द्र + मुपवर्णित + निर्विशेषं(म्), विविध + लिङ्ग + भिदा + भिमानाः

यदो + पससृपुर् + निखिलात् + मकत्वात् , तत्रा + खिला + मरमयो, हरिरा + विरासीत्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गजेन्द्र ने बिना किसी भेदभाव के निर्विशेष रूप से भगवान्‌की स्तुति की थी, इसलिये भिन्न-भिन्न नाम और रूप को अपना स्वरूप मानने वाले ब्रह्मा आदि देवता

उसकी रक्षा करने के लिये नहीं आये। उस समय सर्वात्मा होने के कारण सर्वदेव स्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये।

तं(न्) तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः(स्),
स्तोत्रं(न्) निशम्य दिविजैः(स्) सहसं(म्)स्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्-
चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ 31॥

तद् + वदार्त्त + मुपलभ्य, जगन् + निवासः(स्) ,सह + सं(म्)स्तु + वद्भिः

समुह्य + मानश् ,चक्रा + युधोऽभ्य + गमदाशु

विश्व के एकमात्र आधार भगवान् ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। अतः उसकी स्तुति सुनकर वेदमय गरुड़पर सवार हो चक्रधारी भगवान् बड़ी शीघ्रता से वहाँ के लिये चल पड़े, जहाँ गजेन्द्र अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ था। उनके साथ स्तुति करते हुए देवता भी आये।

सोऽन्तः(स्)सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो,
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं(ङ्) ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं(ङ्) गिरमाह कृच्छ्रान्-
नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥ 32॥

सोऽन्तः(स्)+ सरस् + युरु+ बलेन , उपात् + तचक्रम्

साम्बुज+ करं (ङ्), नारायणा+ खिल+ गुरो

सरोवर के भीतर बलवान् ग्राह ने गजेन्द्र को पकड़ रखा था और वह अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। जब उसने देखा कि आकाश में गरुड़पर सवार होकर हाथ में चक्र लिये भगवान् श्रीहरि आ रहे हैं, तब अपनी सूँड़ में कमल का एक सुन्दर पुष्प लेकर उसने ऊपर को उठाया और बड़े कष्ट से बोला— 'नारायण ! जगद्गुरो ! भगवन् ! आपको नमस्कार है'।

तं(वँ) वीक्ष्य पीडितमजः(स्) सहसावतीर्य,
सग्राहमाशु सरसः(ख्) कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं(म्),
सं(म्)पश्यतां(म्) हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम् ॥ 33॥

सहसा + वतीर्य , कृपयोज् + जहार, विपाटित + मुखा + दरिणा, हरिरमू + मुचदुस्त्रि + याणाम्

जब भगवान् ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुड क़ो छोडक़र कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्र के साथ ही ग्राह को भी बड़ी शीघ्रता से सरोवर से बाहर निकाल लाये।

फिर सब देवताओं के सामने ही भगवान् श्रीहरि ने चक्र से ग्राह का मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्र को छुड़ा लिया।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितायामष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।